विशेष लेख

हिटलर आ रहे हैं, हिटलर जा रहे हैं...

इस लेख में पिल्जर 2003 में लिए गये एक साक्षात्कार का जिक्र करते हैं। उन्होंने रे मैक्गवर्न का इराक पर अमेरिकी हमले के शुरू होने के बाद इंटरव्यू लिया था। मैक्गवर्न अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान की कथित 'राष्ट्रीय सुरक्षा' के शीर्ष पुरुषों में रहे थे। अब वे 71 बरस के हैं और हिलेरी क्लिंटन द्वारा जॉर्ज वाशिंगटन विश्वविद्यालय में दिये गये एक वक्तव्य के दौरान गुस्से से बीच में हिलेरी क्लिंटन की ओर पीठ कर खड़े हो जाने के कारण पुलिस और सुरक्षा बल द्वारा पीटे और जेल में डाले जा चुके हैं।

– ललित कार्तिकेय

इराक पर अमेरिकी हमले के फ़ैसले पर मैक्गवर्न और सीआईए के करीब 45 वरिष्ठ अधिकारियों ने तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश को एक पत्र लिखा। इस पत्र में लिखा था कि अमेरिकी सरकार द्वारा इराक पर हमले का फ़ैसला दरअसल झूठी ख़ुफ़िया सूचनाओं पर आधारित था। पिल्जर बदले में पूछते हैं कि अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान अपने झूठ को लोगों के गले उतारने में कैसे कामयाब हो गया। कैसे वह इस गुनाह से बच निकला? जवाब में मैक्गवर्न कहते हैं - 'बुश प्रशासन को चलाने वाले लोगों की कुछ मान्यतायें लगभग वैसी हैं जैसी हिटलर की किताब 'मीन कैम्फ' में व्यक्त की गई हैं।' पिल्जर एक बड़े अमेरिकी लेखक नॉर्मन मिलर की एक पंक्ति बोलते हैं कि अमेरिका फासीवाद की ओर बढ़ रहा है। कुछ अन्य विचारक इससे भी आगे जा कर कह चुके हैं और कह रहे हैं कि अमेरिका फासीवादी राज्य बन चुका है। अमेरिकी भ्रष्टाचार की पोल खोलने वाले ब्रेडले मैनिंग और विकीलीक्स के संस्थापक जूलियन असांजे के साथ अमेरिकी व्यवहार दर्शाता है कि अमेरिका एक फासीवादी राज्य बन चुका है।

इन दिनों मैं उन स्रोतों के बारे में सोच रहा हूं जो हिंसा को जन्म देते और पोसते हैं और हिंसा के विभिन्न रूपों व प्रभावों के बारे में। इस बारे में कि स्वयं हमारे समाज में हिंसा किन रूपों में सामने आ रही है और हमारे जीवन को किस तरह बदल रही है। रोजमर्रा की जिंदगी देख, अख़बार पढ़, टीवी देख कभी अवसाद से गुजरता हूं असहाय हो कर, कभी अवसाद की अंधेरी, दमघोंटू काल कोठरी में एक खिड़की खोलने के लिए, उम्मीद के परिंदे का गीत सुनने के लिए इतिहास के उन दौरों के बारे में पढ़ने लगता हूं जिनमें हिंसा सर्वव्यापी जान पड़ी थी – सामाजिक वातावरण में धूल भरी निस्पंद हवा की तरह। अजेय जान पड़ती थी। कभी दुनिया में होती मौजूदा हलचलों में से उम्मीद पाने की कोशिश करने लगता हूं – अरब जगत में चलती उथल-पुथल, अन्ना और उनके साथियों द्वारा चलाये गये भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के जवाब में उमड़ा मध्यम वर्गीय जन समर्थन जिसके सम्मुख उस समय सरकार लाचार महसूस करने लगी। ...उम्मीद के बिना जीया नहीं जा सकता।

उम्मीद की इसी बेचैन कोशिश में 'मेनस्ट्रीम' के 3-7 अप्रैल के अंक में जॉन पिल्जर का लिखा एक छोटा-सा लेख पढ़ने को मिला जो अमेरिका के सत्ता प्रतिष्ठान के मूल चरित्र के बारे में है। पत्रिका ने इस लेख को 'काऊंटरकरंट' से प्रकाशित किया है। जाहिर है कि यह आलेख उन्हें महत्त्वपूर्ण लगा होगा। इसमें पिल्जर विख्यात भाषाशास्त्री और विचारक नॉम चॉमस्की द्वारा कही एक बात का उल्लेख करते हैं। वह बात आंखें खेल देने वाली है और हमारे अपने समाज में जो हो रहा है, उसकी भी बहुत हद तक व्याख्या कर देती है। नॉम चॉमस्की बताते हैं कि उदारवादी विचारों वाले समाजों में उग्रवाद कैसे जड़ें जमाता और खुद को फैलाता है – 'उम्मीदों और आदर्शों और एकजुटता में यकीन तथा ग़रीबों व दमितों के लिए सरोकार को तहस-नहस कर दो। इन भावनाओं की जगह आत्मकेंद्रित अहम्मन्यतावाद और सर्वव्यापी सिनीसिज्म यानी सर्वनिषेधवाद को पैदा कर दो जो मान कर चलते हैं कि असमानताओं और दमन की व्यवस्था के अलावा कोई चारा नहीं। लोगों और खास कर युवाओं को यह यकीन दिलाने के लिए कि उन्हें ऐसा ही महसूस करना चाहिए, एक बहुत बड़ा अंतरराष्ट्रीय अभियान चलाया जा रहा है। और लोग ऐसा महसूस भी करने लगे हैं।' ग़लत बातों का विरोध करने वालों के लिए मैंने हाल ही में एक युवा की टिप्पणी सुनी और उसे सुन मैं सन्न रह गया। उसने मुझसे कहा – 'ऐसे लोग बीमार हैं और उन्हें समाज से दूर रखा जाना चाहिए। अगर वे समाज से दूर नहीं रहते तो समाज को जोर-जबरदस्ती से उन्हें दूर कर देना चाहिए ताकि वे समाज में बीमारी न फैला सकें।' यानी अच्छे में यकीन को नेस्तनाबूद कर देने वाली मुहिम कामयाब हो रही है।

इस लेख में पिल्जर 2003 में लिए गये एक साक्षात्कार का जिक्र करते हैं। उन्होंने रे मैक्गवर्न का इराक पर अमेरिकी हमले के शुरू होने के बाद इंटरव्यू लिया था। मैक्गवर्न अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान की कथित 'राष्ट्रीय सुरक्षा' के शीर्ष पुरुषों में रहे थे। अब वे 71 बरस के हैं और हिलेरी क्लिंटन द्वारा जॉर्ज वाशिंगटन विश्वविद्यालय में दिये गये एक वक्तव्य के दौरान गुस्से से बीच में हिलेरी क्लिंटन की ओर पीठ कर खड़े हो जाने के कारण पुलिस और सुरक्षा बल द्वारा पीटे और जेल में डाले जा चुके हैं। क्लिंटन उस वक्तव्य में उन सरकारों की आलोचना कर रही थीं जो अपना विरोध करने वालों और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मानवीय अधिकार को इस्तेमाल करने वालों को गिरफ़्तार करती हैं। और मैक्गवर्न के साथ यही किया अमेरिकी सरकार ने ऐन इस वक्तव्य के दौरान। यह घटना अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान के बारे में बहुत कुछ कह जाती है। अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान की कथनी और करनी में मौजूद खाई के बारे में। बहरहाल।

इराक पर अमेरिकी हमले के फ़ैसले पर मैक्गवर्न और सीआईए के करीब 45 वरिष्ठ अधिकारियों ने तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश को एक पत्र लिखा। इस पत्र में लिखा था कि अमेरिकी सरकार द्वारा इराक पर हमले का फ़ैसला दरअसल झूठी ख़ुफ़िया सूचनाओं पर आधारित था। पिल्जर बदले में पूछते हैं कि अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान अपने झूठ को लोगों के गले उतारने में कैसे कामयाब हो गया। कैसे वह इस गुनाह से बच निकला? जवाब में मैक्गवर्न कहते हैं – 'बुश प्रशासन को चलाने वाले लोगों की कुछ मान्यतायें लगभग वैसी हैं जैसी हिटलर की किताब 'मीन कैम्फ' में व्यक्त की गई हैं।' पिल्जर एक बड़े अमेरिकी लेखक नॉर्मन मिलर की एक पंक्ति बोलते हैं कि अमेरिका फासीवाद की ओर बढ़ रहा है। कुछ अन्य विचारक इससे भी आगे जा कर कह चुके हैं और कह रहे हैं कि अमेरिका फासीवादी राज्य बन चुका है। अमेरिकी भ्रष्टाचार की पोल खोलने वाले ब्रेडले मैनिंग और विकीलीक्स के संस्थापक जूलियन असांजे के साथ अमेरिकी व्यवहार दर्शाता है कि अमेरिका एक फासीवादी राज्य बन चुका है।

...और भारत में? बिनायक सेन को देशद्रोह के आरोप में जेल में डाल देना, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का उपयोग करने वाली अरुंधती राय के विरुद्ध देशद्रोह का मामला दर्ज करना, अन्ना और उनके साथियों के विरुद्ध वक्तव्य दे कर, संदेहास्पद सीडी मीडिया को सौंप कर अन्ना के साथियों को बदनाम करने की कोशिश की गई। राज्य द्वारा आदिवासियों को जंगल से विस्थापित कर बेघर और दरिद्र बना देना और कारपोरेट सेक्टर को सारे कानून तोड़ कर लाभ पहुंचाना, एक के बाद एक भ्रष्टाचार के मामले सामने आना और दूसरी ओर वह युवा जिसने ईमानदारी के आदर्श पर चलने, वंचितों के प्रति सरोकार रखने वाले लोगों को 'बीमार' कहा, समाज, सड़कों, कार्यस्थलों पर सामने आता सामाजिक व्यवहार, अपराधों का निरंतर बढ़ना, संबंधों का लोप और इसी तरह की ढेरों बातें दरअसल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये सारी बातें दर्शाती हैं कि समाज और मनुष्य के रूप में हम क्या होते जा रहे हैं। मन, वचन और कर्म के स्तर पर एक हिंसक समाज।

दरअसल, फासीवाद पहले से अधिक परिपक्व रूप में सामने आ रहा है। सरकारों के कर्म फासीवादी हैं, लेकिन अब उनमें इंसानी मुखौटा पहनने और आदर्शवादी बोली बोलने का पाखंडी हुनर आ चुका है और वह काफ़ी बारीक भी हो चला है। मानवाधिकारों की रक्षा और अंतरराष्ट्रीय आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध के नाम पर 1945 के बाद से अमेरिका 50 से ज़्यादा लोकतांत्रिक तरीकों से चुनी गई सरकारों को नष्ट कर सुहार्तो, मोबुतू, पिनोचेट जैसे नरसंहारियों को अपनी कठपुतलियों के रूप में सत्तासीन कर चुका है। मध्यपूर्व की हर तानाशाही और राजशाही को अमेरिकी समर्थन प्राप्त रहा है। जिस इस्लामी आतंकवाद के हव्वे से अमेरिका दुनिया को डरा रहा है, वह अमेरिकी डॉलरों की ही संतान रहा है। उसे राष्ट्रवाद और लोकतंत्रों को नष्ट करने के लिए इस्तेमाल किया गया।

पिल्जर के अनुसार अरब जगत में होने वाले जनविद्रोह वस्तुत: स्थानीय तानाशाहों के विरुद्ध नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय विकास पर बनी अमेरिकी एजेंसी, अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक द्वारा बनाई गई उस नीति के विरुद्ध है जो दुनिया भर में एक दमनकारी और शोषण पर आधारित अमेरिकी वर्चस्व की भूमंडलीय अर्थव्यवस्था स्थापित कर देना चाहती है। भारत भी नवउदारवादी आर्थिक नीतियों को अपना चुका है और भारतीयों में 'विकास' के ताबड़तोड़ भ्रामक प्रचार से एक निराधार झूठा गर्व का भाव पैदा हो रहा है। आर्थिक वृद्धि के दर के आंकड़े दे कर, दुनिया के अमीरों में भारतीयों की संख्या को उछाल कर। क्रिकेट विश्व कप में भारत की विजय को भारत को एक महाशक्ति होने के वहम की स्थापना के लिए इस्तेमाल कर। और ढेरों अन्य तरीकों से। पूंजी संचालित रंगीन अख़बार और चैनल भी इस अभियान में लगे हैं। उच्च मध्यम वर्ग और मध्यम वर्ग में यह वहम एक विश्वास बनता जा रहा है। आत्मबद्धता की संस्कृति जड़ें जमा चुकी है। इस चमक-दमक के पीछे भयानक मंजर है। भारत में होते खास तरह के विकास की ही संतान है वह युवा जो ईमानदार और सामाजिक सरोकार रखने वाले लोगों को धड़ल्ले से बिना किसी हिचक बीमार बताता है। फासीवाद के लक्षण बहुत रूपों में हमारे सामने हैं। भारतीय राज्य को फासीवादी होने से बचा रहा है जनता का बहुत से रूपों में प्रकट होता संघर्ष। ये संघर्ष किसी एक बड़ी, सब कुछ को अपने दायरे में ले आने वाली विशाल छाते के नीचे एकजुट नहीं हैं। मध्यम वर्ग में उदारवादी लोकतंत्र के बचे-खुचे अवशेष कभी भी लुप्त हो सकते हैं।

लेकिन निजी जीवन में कठिन स्थितियों में भी अभी भी आपको मददगार लोग भी मिल जाते हैं। वही संसार का नमक है। इतिहास में फासीवाद और तानाशाहों की पराजय और हिटलर की आत्महत्या उम्मीद की खिड़की बनाती है। अरब जगत में तानाशाहों के विरुद्ध जन विद्रोह दम घोंट देने वाले माहौल में ऑक्सीजन की तरह लगता है। यकीन होने लगता है कि देर-सबेर लोग अवसाद की दलदल से बाहर आ उठ खड़े होते हैं। डर के दैत्य से मुक्ति पा लेते हैं। अन्ना को मिला जनसमर्थन आप के भीतर पैदा होते सर्वनिषेधवाद से आपको मुक्ति दिलाता है। उसके बाद का घटनाक्रम जरूर मध्य वर्ग आंदोलनकारियों को फ़िर से सर्वनिषेधवाद में धकेल कर उनके मुंह से कहलवा सकता है –'सब साले चोर हैं।' लेकिन यह सब कुछ आत्मबद्धता, सिर्फ़ अपने आप के बारे में सोचने की बीमार संस्कृति की जकड़ को कमजोर करता है। मैंने अपने आस-पास के अनेकों लोगों को इस संस्कृति में गर्क होते देखा है। मैं कभी-कभी कातर हो उठता हूं। जो लोग लोकतंत्र, समता, विचारशीलता की बातें करते हैं और उनके पैरोकार बनते हैं, उन तक में आत्मबद्धता की संस्कृति के लक्षण साफ दिख जाते हैं और अगर आप कभी-कभार उनके छोटे-मोटे 'बौद्धिक' जमावड़े में जायें तो वहां आप पाते हैं कि लोगों की कोशिश आत्मविस्तार की नहीं, आत्मस्थापना की है। आप खिन्न होते हैं। खीझ से भर जाते हैं। पर कहीं न कहीं उम्मीद का शिशु मुस्कुराता है। वह वयस्क नहीं अभी। उम्मीद को रोजाना पाना होता है – समाज और दुनिया में घटित होती उथल-पुथलों के बीच से। इतिहास के गलियारों में चल कर। आज के वक्त में ऐसा असंभव है कि आप उम्मीद को एकबारगी पा लें और वह स्थायी बन जाये।